शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 04 अंक– 13 जनवरी - मार्च - 2026 Impact factor– 4.5

# शैलेश मटियानी जी का उपन्यासों में आंचलिकता

**हरीश चन्द्र पटेल**
शोधार्थी- हिन्दी विभाग
अ. प्र. सिंह वि.वि., रीवा (म.प्र.)

आंचलिक शब्द आंचल से बना है अतः आंचलिक या आंचलिकता की व्याख्या के लिए अंचल शब्द का विवेचन है। अंचल शब्द मूलतः संस्कृत शब्द 'अंचल' है जिसकी व्युत्पत्ति 'अंच' धातु में अलच् प्रत्यय के योग से हुई है। इस प्रकार अंचल शब्द साड़ी के छोर देश के एक भाग और किसी क्षेत्र के एक पार्श्व का द्योतक है। प्रकारांतर से अंचल समग्र रूप से एक मात्र विशेष का सूचक है। देश के संदर्भ में वह उसके एक क्षेत्र विशेष या पार्श्व विशेष का द्योतक है। यह क्षेत्र विशेष देश का कोई एक प्रान्त हो सकता है, स्थान हो सकता है, ग्राम हो सकता है। इस अंचल शब्द में तद्धित उस प्रत्यय के योग से आँचलिक शब्द बनता है, जिसका अर्थ हुआ किसी देश के अंचल क्षेत्र, पार्श्वभाग, प्रान्त, नगर या ग्राम विशेष सं संबंधित। अतः वे उपन्यास जिनका प्रतिपाद्य किसी देश का कोई अंचल विशेष होता है, आंचलिक उपन्यास हैं।

वस्तुतः अंचल शब्द भूखण्ड विशेष का वाचक सिद्ध होता है। यह भू-खण्ड निर्जन या भौगोलिक ही नहीं अपितु सांस्कृतिक आर्थिक तथा सामाजिक आदि की दृष्टि से एक इकाई होता है, जिसकी अपनी निजी विशेषताएँ होती हैं। अतः कहा जा सकता है कि अंचल शब्द एक ऐसे भू-खण्ड विशेष का वाचक है सांस्कृतिक, आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से अपने आप में एक इकाई हों तथा जिसके जीवन की अपनी कुछ विशेषताएँ हों। दूसरे शब्दों में वों कह सकते हैं कि अंचल का सीधा अर्थ है जनपद या क्षेत्र जो अपने आपमें पूर्ण इकाई होता है। फिर उस अंचल विशेष के अपने रीति-रिवाज अपने सुख-दुःख अपनी जीवन प्रणाली अपनी परंपराएँ एवं मान्यताएँ होती हैं, जिनके कारण वह गतिशील होता है।

वास्तव में आंचलिक उपन्यास की परिभाषा निश्चित करना अपेक्षाकृत काफी कठिन कार्य है। यहाँ तक कि एक अमेरिका लेखक की राय में 'आंचलिकता' की कोई निश्चित परिभाषा नहीं की जा सकती। फिर भी हमें 'आंचलिकता' की परिभाषा निश्चित करने के पूर्व कतिपय भारतीय एवं पाश्चात्य लेखकों, विचारकों एवं समीक्षकों द्वारा तत्सम्बन्ध में दी गई राय पर विचार कर लेना उपयुक्त होगा।

आंचलिकता का स्वरूप जिस साहित्यिक कृति में किसी अंचल विशेष के सम्पूर्ण सांस्कृतिक एवं भौतिक परिवेश के स्वरूप का उद्घाटन होता है उस कृति को आंचलिक कहा जाता है। दूसरे शब्दों में आंचलिक साहित्य की ऐसी विशिष्ट विधा है जिसमें किसी ग्रेाम, प्रान्त या विशेष भू खण्ड का धर्म, धार्मिक संस्कार, धार्मिक मान्यतायें, धार्मिक रुढ़ियों, त्योहार, पर्व, तीर्थ, मेले, धार्मिक संस्थायें, धार्मिक स्थान तथा धर्म पुष्प, रीति रिवाज, लोक कथायें, लोक नृत्य, टोटके, अन्ध विश्वास, जातिगत भेदभाव, जादू-टोने, ज्योतिष आदि में विश्वास तथा समसामयिक युग चेतना क्षेत्र विशेष के खान-पान, रहन-सहन, वस्त्र, घर-द्वार, पशु पारस्परिक सम्बन्ध, शिक्षा-स्वास्थ्य, मनोरंजन प्राकृतिक परिवेश, आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों तथा भौगोलिक परिवेश का चित्रण हो उसे आंचलिक कहा जाएगा। ष्जब उपन्यासकार किसी आँचल, गाँव, कस्बे या मुहल्ले को परिवेश बनाकर वहाँ के लोगों के आचार-व्यवहार, जीवन-पद्धति, संस्कृति, लोक-भाषा, धर्म एवं दृष्टिकोण का सूक्ष्म वर्णन करता है, तो वह आंचलिक उपन्यास है। हिन्दी साहित्य में आंचलिकता का आरम्भ सन् 1950 के आस-पास से माना गया है। कुछ मनीषियों ने हिन्दी साहित्य में सन् 1926 या इससे पूर्व भी इसे खोज निकालने का प्रयास किया है। सन् 1947 से पूर्व साहित्य में देश का विश्वास अखंड एकता में दिखाई पड़ता है। इस प्रकार व्यक्तित्व निर्माण में भौतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश का प्रमुख हाथ होता है। व्यक्तित्व के निर्माण में भौतिक परिवेश का प्रथम स्थान होता है। भौतिक परिवेश का तात्पर्य है व्यक्ति का घर, परिवार, स्थानीय वातावरण, प्रकृति, पहाड़, नदी, वन, पर्वत, रेगिस्तान, गाँव, नगर, मैदान, खान-पान, रहन-सहन, आदि भौतिक पर्यावरण के पदार्थ जिनका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप का मानव के व्यक्तित्व रचना में प्रभाव पड़ता है। शैलेश मटियानी का जन्म प्रकृति की सुकुमार क्रोड़ में हुआ। पर्वत, वन एवं हरियाली से आवृत बाड़ेछीना का छोटा सा गाँव एक ओर प्रहरी की भाँति, तरुण तपस्वी सा खड़ा दग्ध धवल हिमालय दूसरी ओर पर्वत उपत्यकाओं में कल-कल निनादिनी पनार और सुयाल नदियाँ, समीप स्थित द्वादश ज्योतिर्लिंगों में मान्य, देवदारू की द्रोणियों से आवृत जागेश्वर का पावन धाम तथा स्थानीय प्रसिद्ध चितई के गोल का देव मन्दिर, वनांचल व पक्षियों का सुन्दर कलरव, पूर्ण ग्राम्य वातावरण में ग्राम बालाओं के मधुर कण्ठ से ध्वनित लोक गीत। इनका मकान अल्मोड़ा से पिथौरागढ़ जाने वाले मार्ग के किनारे स्थित है, जहाँ होकर पहले यातायात व सामान ले जाने के लिए एक मात्र साधन घोड़े या बकरियाँ होती थी। प्रातः मुँह अंधेरे से घोड़े बकरियाँ, पैदल यात्रियों का आवागमन आरम्भ हो जाता था, अब कुछ वर्ष पहले से बस सेवा प्रारम्भ हो गई है।

शैलेश मटियानी ने गाँव की मिट्टी में जन्म लिया और उसी में खेल कर बड़े हुए, दुर्भाग्य से इन्होंने काँटों की सेज में ही जन्म लिया। माता-पिता के स्नेहांचल की छाया सिर पर से उठ जाने पर बचपन से ही घर का पूरा काम करना पड़ा, जिससे प्रकृति का सुन्दर साहचर्य निकटतम रूप से अनायास ही मिल गया तथा प्रकृति निरीक्षण एवं उसके बदलते रूपों की अत्यन्त गहरी अनुभूति हो गई। प्रकृति का यह स्वाभाविक सौन्दर्य इनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन कर रह गया। इन्होंने प्रकृति के प्रेम की अपनी सूक्ष्म अनुभूति को अपने साहित्य में यत्र तत्र अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति दी है। यही प्रकृति का अनुरागात्मक सौन्दर्य इनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं साहित्य में समाहित है। वायु, नदियों का शीतल जल, वन, खेत, पशु, पक्षी अकृत्रिम ग्राम्य जीवन के निरन्तर प्रभाव में रहे।

प्रकृति के कण-कण ने जहाँ एक ओर इन्हें स्वस्थ देह दिया वहाँ इनके जीवन पर अपना अमिट प्रभाव छोड़कर इनकी रागात्मक वृत्तियों तथा सौन्दर्यानुभूति को पोषित किया। पशु-पक्षी, पेड़, पौधे, वन्य जन्तु, टीले, गुफा, झाड़ी, आदि प्रकृति नियामक समस्त इकाइयों से इनकी गहरी आत्मीयता हो गई थी और उनके सूक्ष्मतम अनुभूति एवं संवेदनाओं को इन्होंने ग्रहण कर लिया है। इसीलिए अपनी साहित्य सर्जना के क्षेत्र में वे प्रकृति से इन अवयवों के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकते। बाड़े छीना और आस-पास के गाँव के लोगों के पार्वत्य जीवन का, वनांचलों के साथी ग्वालों, ग्वालिनों की चंट-चदड़ संगति का मुझे देखते ही वाँई, वाँई रिरियाने वाली गौरी-भागी भैंसों, बाँ-बाँ रंभाने वाली बिनी रूपसी गायों और मी-मी-मी मिमियाने वाली चनुली-भाँगीरी-सेतुली बकरियों और उनकी ठेप भंगोरुबा, ठेप-ठेप। ठेप मगनुवा ठेप-ठेप। कहते ही अपने दोनों पाँवों को ऊपर उठाकर, बुरूश पात जैसे कानों को सिकोड़ा कर, आपस में भिड़ पड़ने वाले भँगिरूवा मगनुवा बोकियों का, घर की देली के ऊपर घोंसला बनाकर, खेतों के आँगन में ठौर-ठौर चीं-चीं-ची अन्न पूर्णा के मंगल गीत गाती धिनोड़ी (गौरैया) और लोक कथा काव्यों के जादूगर नायक हनुमन्त के जाप, काल भैरव की हुंकार के स्वामी बिट्ट-सिट्ट रमोलों के वंशधर बालक श्रीनाथ के आत्म हंस कफू पक्षियों की 'कफू-कफू-कफू' का.....चौमास

की रून झुनिया वर्षा की बूंदों की तरह मन मस्तिष्क की मिट्टी में जब हो जाने वाले इस सौन्दर्य का, कभी-कभी मायके की मर्म भेदी स्मृतियों से अट पट कर, 'दिगोलाली' कह कर लम्बी उसाँसें भरते हुए, बन खेतों की हरियाली पर मंडराती, गन्धिल हवाओं की टीस से कस्मसा देने वाली और कभी अपने साढ़े तीन तोले सोने की नथुली और दस रत्ती की फुल्ली से जगमगाती नुकीली नाक के नीचे बन सुगे की पंख हीन पोथलों जैसे सगबुगाते, हिसालू, जैसे रसीले होठों की मोतियों की माला को मात करती दंत पाटी को खिल खिलाकर, लोक गीतों के प्रणय छन्दों को गुन गुना कर द-रे रे-रे अ-हा-हा-हा करती प्यार से गद-गदा कर हवा में अपनी हंस गोरी बाँहों को तोरण जैसे तान देने वाली पार्वतियों का और खेत फूलते मिजोलों, बन फूलते बुरूशों का कितना अगाध ऋण है मुझ पर, कि अब जब मैंने कुमायँ अंचल की पृष्ठ भूमि को लेकर कुछ लिखने का प्रयत्न किया है, तो इन सब की स्मृतियों से निकल मेरी आत्मा भी अट-पटा उठी हैक दिगोलाली ई-ई-ई...''

प्रकृति के सौन्दर्य का यह प्रभाव लेखक के व्यक्तित्व में आत्मसात् होकर उनके प्रायः सभी आंचलिक उपन्यासों एवं कहानियों में अभिव्यक्त हुआ है। जैसे- ''पनार अपनी रौ बही जा रही थी, उसके किनारे पड़े गंग-लौडों से टकरा-टकरा कर फेनिल सर्पिल होती। दर- दर विछुलती विलीन होती जा रही थी'' और भी- ''शैलकन्या की पीड़ा को कोई पहाड़ी ही समझ सकता है, जिसने जौल मुरली के रन्ध्रों में उनकी वेदना, विवशता के गीत जगाये हों, जिसने बुरुशी फूल की लाली, चमेली के फूल की महक देखी हो, जिसने जागेश्वर-विनसर की उपत्काओं में गमकते हुड़के, झमकते झोड़े सुने हों, जिसने दूध जैसी मुस्कान के सलमे-सितारों से कढ़ा साटन का पिछौड़ा देखा हो, और गंगा जल के आँसुओं से भीगा सात पाट का काला घाघरा य जिसने धौलछीना के होंठ चूम कर लौटती हुई हवा में लहराते रेशम के फूलों को देखा हो।

पत्थर व लकड़ी से बना दो मंजिला मकान जिसकी पहली मंजिल का एक कमरा गाय-भैंस व बकरियों के रहने को निश्चित रखा गया है, एक गोठ का कमरा खाना बनाने के लिए रहता था। पानी के नल तब घर में नहीं थे, पानी भरने के लिए नौले या नदी जाना पड़ता था। घरों में लकड़ियाँ जलाई जाती हैं जिन्हें जंगल से स्वयं काट कर लाना होता था। ऐसे घर में जन्म लिया रचनाकार शैलेश ने। बचपन में सुगठित कद स्वस्थ शरीर, गेहुआ रंग, जाँघिया, कमीज, सर पर टोपी उसे भी तिरछा कर पहनते थे।

शैलेश मटियानी ने जितने व्यापक और सूक्ष्म फलक पर, शिद्दत से अपने समय को देखा, किसी दूसरे साहित्यकार ने नहीं देखा। शैलेश मटियानी मूलतः एक आंचलिक कथाकार हैं। इसी कारण उनकी पीड़ा का स्वर अंचल के साथ जुड़ता है। वह किसी एक क्षेत्र से जुड़े हुए नहीं थे, बल्कि उन सभी क्षेत्रों के परिवेश की समस्याओं से परिचित थे । जिस तरह मटियानी ने कुमायूँ अंचल की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिवेश का चित्रण किया है, उसी प्रकार महानगरीय अंचल की स्थितियों का भी चित्रण किया है, जिसमें यह देखा जा सकता है कि पिछड़े, अभावग्रस्त, हाशिए का समाज केसे अपनी जिंदगी से जूझ रहा है? मुम्बई में गरीब व निम्नवर्ग की स्थिति क्या है? उन्हीं का चित्रण बखूबी अपने उपन्यासों में किया है। शैलेश मटियानी एक तरफ जहाँ समाज के उच्चवर्गीय समाज पर व्यंग्य करते हैं तो दूसरी तरफ अपने उपन्यासों में पत्रों के माध्यम से निम्नवर्गीय समाज के आँसू भी पोंछते हैं। शैलेश मटियानी पहाड़ी जीवन को अभिव्यक्त करने वालों हस्ताक्षर हैं। इनका कथा साहित्य पहाड़ी संस्कृति, सभ्यता, लोकजीवन एवं प्रकृति में होने वाली घटनाओं से भरा है। इन्होंने अपने उपन्यासों में पहाड़ी जीवन के अन्तर्विरोधों को प्रस्तुत किया है। प्रकृति की क्रोड में निवास करने वालों उपेक्षित मानुष को इन्होंने अपनी कथाभूमि का नायक बनाया है। उनके साहित्य में उत्तराखण्ड रचा बसा है। शैलेश मटियानी ने अभावों में रहकर भी भाव से परिपूर्ण साहित्य रचा, वह उनके जीवनानुभवों का सार है। शैलेश मटियानी ने कुमाऊँ अंचल के पर्वतीय बस्तियों एवं कस्बों को अपने उपन्यास का विषय बनाया है। कुमाऊँ अंचल की पीड़ा, वेदना, दःख-दर्द को उपन्यासकार ने भोगा है, उसे गले लगाया है। इनके उपन्यासों में खुद का भोगा हुआ यथार्थ विद्यमान है। वे केवल काल्पनिक साहित्य सृजन करने वाले साहित्यकार नहीं हैं। उन्होंने कहा है, ''बगैर अनुभव के रचना संभव नहीं। यानी आप जो कुछ लिखते हैं, उसके पीछे कोई न कोई ठोस अनुभव तो होना ही चाहिये।''

शैलेश मटियानी ने जीवन का बड़ा हिस्सा कुमायूँ के पर्वतीय अंचल में व्यतीत किया। कुमायूँ के पर्वत, नदियाँ, गाँव, खेत -खलिहान, तीन-त्योहार, पशु-पक्षियों को वह कभी भूल नहीं पाये। भोगे हुए सत्य को लेकर उन्होंने अपने उपन्यासों का सृजन किया। मटियानी में कवि प्रतिभा बचपन से ही थी। वह जो कार्य करते उसे चरम तक पहुँचाते थे। उन्होंने लिखा है,-''आज अनुभव कर रहा हूँ कि मैं स्वप्नजीवी ही अधिक रहा हूँ। मेरी किशोरावस्था स्वप्न-लोकों में ही बीती थी। इन स्वप्न-लोकों के निर्माण की पृष्ठभूमि मेरे आस-पास की पहाड़ी धरती, लोक-संस्कृति और जन-जीवन की परम्पराएँ ही थीं, इसमें संदेह नहीं, मगर मेरे अतिभावुक मन में इनसे इतर भी बहुत कुछ संजोया-सिरजा था। मेरे आस-पास जो यथार्थ रहता था, उसे अनोखी-अनोखी कल्पनाओं से संबद्ध और समलंकृत कर, में अनेक असम्भाव्य-स्वप्नों की सृष्टि किया करता था।''

शैलेश मटियानी के उपन्यासों की गति विशाल भूभाग की अनेक दशाओं से होकर गुजरती है। उनके उपन्यासों में नयी जमीन की तलाश न होकर, उस जमीन के माध्यम से समस्त लोकजीवन को उसकी अच्छाइयों, बुराइयों तथा सौंदर्य-विद्रूपता के साथ चित्रित किया गया है। इन्होंने जनमानस के अभावग्रस्त जीवन की आर्थिक समस्याओं और सामाजिक विषमता को बड़ी प्रामाणिकता के साथ चित्रित किया है। शैलेश मटियानी ने पहाड़ी जीवन एवं वहाँ के अंचल की विषमता, जाति-पाँति, अशिक्षा, पिता का अहंकार, बिखरे हुए मानवीय मूल्यों को लेकर चल रही समस्या को उपन्यासकार की कथावस्तु बनाया है, जिससे यह पता चले कि पहाड़ियों की जिंदगी कितनी कठिन होती है। उनके समक्ष जीवन जीने के लिए कठिनाई कितनी हे। वह पहाड़ी संस्कार में रचे-बसे लोगों को चेतनाशील बनाते हैं, क्योंकि नके यहाँ शहरी समाज की तरह छल-कपट नहीं है।

शैलेश मटियानी अपने समय के सशक्त कथाकार हैं, जिनके जेहन में समाज की विसंगतियाँ हैं। वे अपने उपन्यासों में दलितों एवं निचले वर्ग के साथ खड़े नजर आते हैं। अपने रचना कर्म की बदौलत कम समय में ही लोकप्रिय हो जाना उनकी कलम की ताकत को प्रदर्शित करता है। शैलेश मटियानी ने पहाड़ी एवं महानगरीय अंचलों पर उपन्यास लिखा। इन रचनाओं को दो श्रेणियों के अन्तर्गत रखा जा सकता है- वे उपनयास जिनमें पहाड़ी सभ्यता, संस्कृति, विचार, लोकाचार, अंधविश्वास, विसंगतियों जैसी समस्या स्थान पाती है-'हौलदार', 'चिट्ठीरसैन', 'मुख सरोवर के हंस', 'एक मूठ सरसों', 'गोपुली गफूरन', 'सर्पगन्धा', 'चौथी मुट्ठी' प्रमुख हैं तो महानगरीय अंचल को केन्द्र में रखकर 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक', 'कबूतरखाना', 'किस्सा नर्मदा वेन गंगूबाई' आदि मोहल्ले विशेष को लेकर लिखे गये हैं। शैलेश मटियानी के प्रमुख उपन्यासों की चर्चा विस्तार से होगी।

'हौलदार' (1960) उपन्यास अल्मोड़ा के धौलछीना गाँव की पृष्ठभूमि पर लिखा गया आंचलिक उपन्यास है। इसमें कुमायूँ अंचल की प्रकृति, सामाजिक परिवेश, दैनंदिनी कार्य, रहन-सहन, विचार को लेखक ने दिखाया है। इस उपन्यास के केन्द्र में डूँगर सिंह नाम का अपाहिज पात्र है जिसके इर्द-गिर्द उपन्यास की कथावस्तु चलती है। इसमें उपन्यासकार ने डूंगर सिंह के मनोभाव व पीड़ा का मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया है। डूंगर सिंह पलटन में भर्ती होता है, लेकिन प्रशिक्षण के दौरान अपनी ही गोली का शिकार हो जाता है। वह हौलदार बनने का सपना

पूरा नहीं कर पाता है। विवश होकर गाँव लौटना पडता है, जिसके कारण उसके मन में अनेक विचार उठने लगते हैं। अपनी जीवनाकांक्षाओं और सपनों को मिटते देख उसका मन कुण्ठाओं से भर जाता है। अपने पैर से अपाहिज होने के कारण घर वालों से अलग महसूस करता है, जिसके कारण उनके मन में द्वेष की भावना जन्म लेती है। पहाड़ी समाज में हौलदार बनना, दो पैसे कमाकर लाना, उस समय की बड़ी बात थी। जिसका लेखक यथार्थ चित्रण करता है अर्थात् परिवार के लोगों का डूंगर सिंह पर भरोसा था कि वह हौलदारी का पैसा घर भेजेगा तो उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होगी। यह मनःस्थिति पर्वतीय अंचल के लोगों में आज भी है क्योंकि जितना कठिन जीवन पर्वतीय अंचल का जनमानस व्यतीत करता है, अन्यत्र असंभव है।

'बोरीवली से बोटी बन्दर तक' शैलेश मटियानी का सर्वप्रथम आंचलिक उपन्यास उनके द्वारा सन् 1956 में श्रीकृष्ण पुरी हाउस बम्बई में लिखा गया तथा 1959 में प्रकाशित हुआ। बोरीवली और बोटीबन्दर बम्बई के दो स्टेशन हैं। लेखक ने इस उपन्यास में बम्बई के इन दो स्टेशनों के बीच निवास करने वाले समस्त रामगंज का अपनी अनुभूतियों के आधार पर आंचलिक चित्रण किया है।

एक ओर धनिक वर्ग की विलासिता, शासन के कर्मचारियों का अनगिनत व्यवहार और दूसरी ओर फुटपाथों, रेलवे स्टेशनों पर कारती मानवता के यथार्थ चित्रण द्वारा कथाकार ने इन गरीबों की संवेदना को उजागर में सफलता प्राप्त की है। साथ ही इस क्षेत्र में निवास करने वाली वेश्याओं के जीवन की यथार्थ झांकी प्रस्तुत करते हुए शर बेचने के लिए उनकी विवशता पर सहानुभूति प्रकट की है और उनसे प्राप्त होने वाले कर से तत्कालीन शासन तंत्र की आय के लिए शासन पर व्यंग्य किया।

उपन्यास के मुख्य पात्र 'वीरेन्द्र' में उपन्यासकार के स्वयं के व्यक्तित्व की प्रतीति होती है जो नौकरी की तलाश में अपने घर बाड़ेछीना से एक पण्डित के साथ बम्बई चला आया है और बेकार है। अब अपना उपनाम 'शील' बताता है। उपन्यास के प्रारम्भ में उपन्यासकार वीरेन्द्र के मुख से उसकी स्मृति को साकार कर पण्डित के समक्ष कुमाऊँ अंचल का चित्र उभार देता है। केवल प्रकृति का ही नहीं अपितु पूर्ण आंचलिक चित्रण।

'कबूतर खाना' मटियानी जी का बम्बई अंचल का दूसरा आंचलिक उपन्यास है। इसका लेखन कार्य भी लेखक ने बम्बई के श्रीकृष्णपुरी हाउस में सन् 1956-57 में किया तथा सन् 1960 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास की कथा भूमि बम्बई के एक प्रसिद्ध मोहल्ले भूलेश्वर में केन्द्रित है। भूलेश्वर जैसे ही बम्बई में कई मोहल्ले हैं अतः इस सम्बन्ध में लेखक ने स्वयं कहा है 'मैं भूलेश्वर बम्बई के कई और भी मोहल्लों का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए उसे प्रतीक के रूप में देखा परखा जाए।'

इस उपन्यास में बम्बई के प्रसिद्ध मोहल्ले भूलेश्वर के सेठों एवं सेठानियों की कथा उनके कबूतररुमा नौकर गणपत रामा के माध्यम से कहलाई गई है। रामा शराब के नशे में है और इस उपन्यास को एक प्रकार से चेतना प्रवाही शैली में लेखक ने प्रस्तुत किया है। गणपत रामा अपनी खुमारी के दौरान जो भी कथा स्मृति में आती है, कहता चला जाता है। उसका पोपट बेबीचंद में उसका साथ देता है। 'किस्सा नर्मदा बेन गंगू बाई' कथाकार का यह बम्बई अंचल का तीसरा आंचलिक उपन्यास है। इसे कथाकार ने सन् 1959-60 में लिखा तथा सन् 1961 में प्रकाशित हुआ। पुस्तकाकार में प्रकाशित होने से पूर्व यह उपन्यास केसरी से प्रकाशित होने वाली पत्रिका में प्रकाशित हो चुका था। इस उपन्यास में कथाकार ने बम्बई के कमाठीपुरा व गोलीपीठा नामक स्थानों में निवास करने वाली वारांगनाओं के वातावरण का चित्र उपस्थित कर यह दिखर्शन कराया है कि किस प्रकार गरीबी से मजबूर मजदूर सिपाई अपने शरीर को वासना तृप्ति के लिए बेच कर अवैध सन्तानों को फुटपाथों पर छोड़ देते हैं। और बम्बई में 'बस्तर्ड' कहे जाने वाला एक वर्ग ऐसे बच्चों को पालकर सभी प्रकार के कुकर्मों में बाल्यकाल से ही दक्ष बनाकर 'पोपेट' के नाम से अभिहित करता है और इनसे अपना उल्लू सीधा करवाता है। दूसरी ओर बम्बई में एक ओर सेठ लोगों का धनिक वर्ग है, जो सेठ नामर्दों के कारण सेठानियों की वासना पूर्ति में असमर्थ होकर उनकी वासना की तृप्ति हेतु नौकरों के शरीर को सिपायों में खरीदते हैं तथा अन्त में उन्हीं नौकरों को चोरी का आरोप लगाकर जेल भेज देते हैं। इस उपन्यास में कथाकार के नारी के दो रूपों का उद्घाटन कराया है, एक वे स्त्रियाँ हैं जो महलों के वैभव में निवास करती हैं, विपुल वासनावती होती हैं, जिन्हें सेठानी कहा गया है। ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व इस उपन्यास में सेठानी नर्मदा बेन करती है।

'पुर्नजन्म के बाद' उपन्यासकार शैलेश मटियानी का यह बम्बई अंचल से सम्बन्धित चौथा उपन्यास है। यह उपन्यास सन् 1964 में हिन्द पॉकेट बुक्स दिल्ली से 'मुसहरा' उपन्यास के नाम से प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने प्राचीन शुक-मैना संवाद शैली को अपनाकर बम्बई के सेठों की वासना का चित्र प्रस्तुत किया है। सेठ मगन जी छबीलदास जी अपनी पत्नी चन्द्रकान्ता की लुका छिपी वयस्कता मर्देकर की रखैल के रूप में रख लेते हैं और उसके लिए अलग से वसुन्धरा मेन्शन बना देते हैं। सेठ मगन जी ने वसुन्धरा के मन बहलाव के लिए कल्याणी नाम की मैना पाली है और बाद में एक पोपट से तोता खरीद लेते हैं। इस तोते को कल्याणी मैना के पिंजरे में ही रख दिया जाता है। 'चिट्ठी रसैन' शैलेश मटियानी का कुमाऊँ अंचल का प्रथम आंचलिक उपन्यास है। इस कथाकार मटियानी ने अपने बम्बई प्रवास के जीवन में सन् 1958-59 में लिखा तथा सन् 1960 में यह उपन्यास कलकत्ता से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'आदर्श' में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हो चुका था। इस उपन्यास को लिखने से पूर्व लेखक की दो आंचलिक कहानियाँ पोस्टमैन और रमोती प्रकाशित हो चुकी थी, पाठकों को ये कहानियाँ अधिक पसन्द आई। अतरू कथाकार ने इन दोनों कहानियों के कथानक के समन्वित रूप को विस्तार देकर चिट्ठी रसैन उपन्यास की रचना की। कथावस्तु का प्रारम्भिक केन्द्रस्थल अल्मोड़ा जिले के बाड़ेछीना अंचल में स्थित पनार नदी के किनारे बसा हुआ उडल गाँव है। वहाँ पर मोहनसिंह की विवाहिता पत्नी रमोती को मोहनसिंह की सेना में मृत्यु हो जाने पर पीताम्बर चिट्ठीरसैन भ्रष्ट करता है। सामाजिक भय के कारण पीताम्बर चिट्ठी रसैन स्वयं के द्वारा अवैध गर्भ को धारण की हुई रमोती को पत्नी के रूप में स्वीकार करने को मना कर देता है और रमोती भी अपने अवैध गर्भ को सामाजिक तिरस्कार के भय से किसी को बता नहीं सकती और इस यंत्रणा से मुक्ति पाने का एक ही उपाय उसे सूझता है, वह जल समाधि लेकर जीवनलीला समाप्त करने का निश्चय करती है।

होलदार इस उपन्यास को शैलेश मटियानी ने बम्बई में सन् 1958 और 1960 के बीच लिखा। यह मटियानी का प्रकाशन क्रम में पहला तथा लेखन क्रम में दूसरा आंचलिक उपन्यास है। उपन्यास की कथावस्तु अल्मोड़ा के बाड़ेछीना स्थान के समीपस्थ घोलजीना अंचल से सम्बन्धित है। होलदार उपन्यास का नायक डूंगरसिंह एक नवयुवक है जो सेना में भर्ती होकर हवलदार बनने की अपनी आकांक्षा को पूर्ण कर अपने गाँव में अपना प्रभाव दिखाने की इच्छा रखता है, किन्तु प्रशिक्षण काल में अपनी ही गोली से अपने को पाँच से पांग बनाकर बैसाखी के सहारे छः महीने में ही घर लौट आता है। अविवाहित एवं पंगु डूंगरसिंह के मस्तिष्क में एक हीनता की ग्रन्थि बन जाती है। वह जीवन-पर्यन्त अपनी खिमुली-भिमुली भौजियों के व्यंग्य, उलाहने एवं आतंक को सहन करते रहते हैं। डूंगरसिंह नरुली से प्रेम प्राप्त करने में असफल रहता है। उपन्यासकार ने डूंगरसिंह के आन्तरिक प्रेम के उद्घाटन में अपनी कला प्रदर्शित की है। साथ ही डूंगरसिंह की हीनता ग्रन्थि से जनित क्रिया -प्रक्रियाओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की है।

*****

**संदर्भ सूची:-**

1.शिवप्रसाद सिंह, आंचलिकता और आधुनिक परिवेश कल्पना, मार्च 1965, पृष्ठ
2.शैलेश मटियानी-मेरी तैतीस कहानियाँ, पृष्ठ 6, 7
3.शैलेश मटियानी-बोरीवली से बोरी बंदर तक, पृष्ठ 118-119
4.शैलेश मटियानी व्यक्तित्व और कृतित्व, उर्बीशचंद्र मिश्र, पृ0 67
5.शैलेश मटियानी, बोरीवली से बोटी बन्दर तक, पृ0 67
6.शैलेश मटियानी, कबूतरखाना, पृ0 57
7.शैलेश मटियानी, चिट्ठी रसैन, पृ0 112